भारतीय ज्ञान प्रणाली उद्गम और विकास

सम्पादक :

डॉ. दिनेश चन्द्र शर्मा

भारतीय ज्ञान प्रणाली
उद्गम और विकास

सम्पादक :

डॉ. दिनेश चन्द्र शर्मा

Ph.D., D.Lit. (Sub.)

निदेशक, कॉम्पिटिशन प्लस ग्रुप ऑफ इन्स्टीट्यूशन,

अजमेर

Books n Books

51/1509, आचमन, वेदविहार,

लोहाखान, अजमेर-305001

प्रकाशक :
पुष्पा शर्मा
Books n Books
51/1509, आचमन, वेदविहार,
लोहाखान, अजमेर-305001
ई-मेल : bnbajmer@gmail.com
मो. 9660111549

संस्करण
प्रथम 2026

ISBN : 978-81-993854-1-2

मूल्य - 400/-

रचना - भारतीय ज्ञान प्रणाली-उद्गम और विकास

सम्पादक - डॉ. दिनेश चन्द्र शर्मा

आवरण - श्रीनिवास प्रिन्टोग्राफिक्स, अजमेर

मुद्रक
श्रीनिवास प्रिन्टोग्राफिक्स, अजमेर

3

भारतीय ज्ञान सम्पदा में वैदिक साहित्य का विवरण

डॉ. रीता पारीक
प्राचार्य
हुकुमचन्द नोबेल इंस्टीट्यूट ऑफ साईंस एण्ड टेक्नोलॉजी, अजमेर

भारतीय ज्ञान-सम्पदा में वैदिक साहित्य का स्थान अत्यन्त प्राचीन, व्यापक और मौलिक है। भारतीय चिन्तन, धर्म, दर्शन, कर्मकाण्ड, सामाजिक जीवन तथा आध्यात्मिक साधना की मूल आधारशिला वैदिक साहित्य में ही निहित है। वैदिक साहित्य को समझने की सुविधा की दृष्टि से इसे चार मुख्य भागों में विभाजित किया जाता है—वेदों की संहिताएँ, ब्राह्मण ग्रन्थ, आरण्यक ग्रन्थ और उपनिषद्। ये चारों परस्पर सम्बद्ध हैं और वैदिक परम्परा के क्रमिक विकास को स्पष्ट करते हैं।

वैदिक साहित्य का प्रारम्भ वेदों की संहिताओं से होता है। संहिता शब्द का अर्थ है—पदों का संधि आदि नियमों के अनुसार व्यवस्थित और समन्वित रूप। पाणिनि के अष्टाध्यायी सूत्र 'परः संनिकर्षः संहिता' के अनुसार निकटता के कारण पदों का संयुक्त रूप ही संहिता कहलाता है। व्याकरण की दृष्टि से संहिता वह पद-समूह है जो प्रयोग के योग्य हो। इसी कारण मंत्रों के संग्रह को संहिता कहा गया है। वेदों का मूल और प्राचीनतम स्वरूप यही मंत्र-संहिता है।

वेदों की चार संहिताएँ मानी जाती हैं—ऋग्वेद संहिता, यजुर्वेद संहिता, सामवेद संहिता और अथर्ववेद संहिता। ऋग्वेद संहिता वैदिक साहित्य की सर्वाधिक प्राचीन कृति है, जिसमें देवताओं की स्तुति में रचित ऋचाएँ संग्रहित हैं। इसमें अग्नि, इन्द्र, वरुण, सोम आदि देवताओं की उपासना, प्रकृति-पूजा और मानव की आशाएँ, आकांक्षाएँ तथा जीवन-दृष्टि अभिव्यक्त होती है। यजुर्वेद संहिता मुख्यतः यज्ञकर्म से सम्बन्धित मंत्रों का संग्रह है। इसमें यज्ञ की विधि, कर्मकाण्ड और आहुतियों का विधान प्रमुख रूप से वर्णित है। सामवेद संहिता में ऋग्वेद की ही अनेक ऋचाओं को संगीतात्मक रूप देकर संकलित किया गया है। इसका प्रधान उद्देश्य यज्ञ में गान की व्यवस्था करना है, इसलिए इसे भारतीय संगीत परम्परा का मूल स्रोत भी माना जाता

है। अथर्ववेद संहिता में लौकिक जीवन से जुड़े विषय—रोग-निवारण, गृहस्थ जीवन, सामाजिक समस्याएँ, व्रत-विधान, शान्ति और कल्याण की कामनाएँ—विशेष रूप से मिलती हैं। इस प्रकार चारों संहिताएँ वैदिक जीवन के विभिन्न पक्षों को समग्र रूप से प्रस्तुत करती हैं।

वैदिक यज्ञ-परम्परा में इन चारों वेदों का व्यावहारिक उपयोग चार ऋत्विकों के माध्यम से होता है। यज्ञ में चार प्रमुख ऋत्विज् होते हैं—होता, अध्वर्यु, उद्गाता और ब्रह्मा। होता का कार्य ऋग्वेद की ऋचाओं का पाठ करना होता है। वह देवताओं का आह्वान करता है और स्तुतियों के माध्यम से यज्ञ को आध्यात्मिक आधार प्रदान करता है। इसी कारण ऋग्वेद को होतृवेद भी कहा जाता है। अध्वर्यु यजुर्वेद का प्रतिनिधि होता है। वह यज्ञ की सम्पूर्ण क्रिया का प्रत्यक्ष संचालन करता है—यज्ञ-वेदि का निर्माण, उपकरणों की व्यवस्था तथा घृत, हवि आदि की आहुतियाँ देना उसी का दायित्व होता है। उद्गाता सामवेद के मंत्रों का गान करता है। उसका कार्य यज्ञ को संगीतमय बनाकर देवताओं को प्रसन्न करना माना जाता है। ब्रह्मा चारों वेदों का ज्ञाता होता है और सम्पूर्ण यज्ञ का निरीक्षक, अधिष्ठाता तथा निर्देशक होता है। यदि यज्ञ में कोई त्रुटि हो जाए तो ब्रह्मा उसका शमन करता है।

ऋचां त्वः पोषमास्ते पुपुष्वान्, गायत्रं त्वो गायति शक्वरीषु।

ब्रह्मा त्वो वदति जातविद्यां यज्ञस्य मात्रां विमिमीत उ त्वः ।। ऋग्वेद 10.71.11

ऋग्वेद के उक्त मंत्र में इन चारों ऋत्विजों के कर्मों का संकेत मिलता है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि वैदिक यज्ञ केवल कर्मकाण्ड नहीं था, बल्कि मंत्र, विधि, संगीत और ज्ञान—इन चारों का समन्वित रूप था। इसी समन्वय से वैदिक संस्कृति का विकास हुआ, जिसने आगे चलकर ब्राह्मण ग्रन्थों में यज्ञ की व्याख्या, आरण्यकों में प्रतीकात्मक चिन्तन और उपनिषदों में दार्शनिक एवं आध्यात्मिक ऊँचाइयों को जन्म दिया। इस प्रकार वैदिक साहित्य भारतीय ज्ञान-परम्परा का मूल स्रोत और आधार स्तम्भ है।

वैदिक वाङ्मय का द्विविध विभाजन :

वर्ण्य विषय की दृष्टि से समस्त वैदिक वाङ्मय का द्विविध विभाजन किया गया है—कर्मकाण्ड और ज्ञानकाण्ड। यह विभाजन वैदिक चिन्तन की दो प्रमुख धाराओं को स्पष्ट करता है, जिनमें एक ओर कर्म, यज्ञ और अनुष्ठान की प्रधानता है, तो दूसरी ओर तत्त्वचिन्तन, आत्मज्ञान और मोक्ष का लक्ष्य।

कर्मकाण्ड के अन्तर्गत वेदों की संहिताएँ और ब्राह्मण ग्रन्थ रखे जाते हैं। इसका कारण यह है कि वैदिक युग में यज्ञ को जीवन का केन्द्रीय आधार माना गया था।

वेदों में यज्ञ से सम्बन्धित मंत्रों का संकलन है, जिनके द्वारा देवताओं का आह्वान, स्तुति और तृप्ति की जाती है। ये मंत्र यज्ञ की विधि को संकेत रूप में प्रस्तुत करते हैं। ब्राह्मण ग्रन्थों में इन्हीं मंत्रों की विस्तृत व्याख्या मिलती है। ब्राह्मण ग्रन्थ यज्ञ की प्रत्येक क्रिया का अर्थ, उद्देश्य और फल स्पष्ट करते हैं तथा यह बताते हैं कि अमुक विधि क्यों और कैसे की जानी चाहिए। इस प्रकार वेद और ब्राह्मण मिलकर वैदिक कर्मकाण्ड की पूर्ण रूपरेखा प्रस्तुत करते हैं, जिसमें यज्ञ को लौकिक और पारलौकिक कल्याण का साधन माना गया है।

ज्ञानकाण्ड के अन्तर्गत आरण्यक ग्रन्थ और उपनिषदें आती हैं। आरण्यक ग्रन्थों का विकास उस अवस्था में हुआ जब यज्ञ की बाह्य क्रियाओं के साथ-साथ उनके आन्तरिक और आध्यात्मिक अर्थों पर चिन्तन आरम्भ हुआ। 'आरण्यक' शब्द से ही स्पष्ट है कि इन ग्रन्थों का अध्ययन वनवासी साधकों द्वारा किया जाता था, जो कर्मकाण्ड की अपेक्षा उसके गूढ़ अर्थों में अधिक रुचि रखते थे। आरण्यक ग्रन्थों में यज्ञीय क्रियाओं की प्रतीकात्मक, आध्यात्मिक और दार्शनिक व्याख्या प्रस्तुत की गयी है। यहाँ यज्ञ को केवल बाह्य कर्म न मानकर आन्तरिक साधना और मानसिक प्रक्रिया के रूप में देखा गया है।

इसी आध्यात्मिक व्याख्या को आधार बनाकर उपनिषदों की रचना हुई। उपनिषदें वैदिक चिन्तन की पराकाष्ठा मानी जाती हैं। इनमें कर्मकाण्ड की अपेक्षा ज्ञान को प्रधानता दी गयी है। उपनिषदों में ब्रह्म, ईश्वर, जीव, आत्मा, प्रकृति, संसार, बन्धन और मोक्ष जैसे गम्भीर दार्शनिक विषयों की समीक्षा की गयी है। यहाँ यह प्रतिपादित किया गया है कि यज्ञादि कर्म अन्ततः आत्मज्ञान की ओर ले जाने वाले साधन हैं, किन्तु मोक्ष का वास्तविक उपाय ब्रह्मज्ञान ही है। इसी कारण आरण्यक और उपनिषदों को ज्ञानकाण्ड कहा जाता है।

वैदिक वाङ्मय को समझने और उसके सम्यक् अध्ययन के लिए जिन सहायक ग्रन्थों की रचना हुई, उन्हें वेदांग कहा गया। वेदांगों का उद्देश्य वेदों के कठिन मंत्रों, विधियों और अर्थों को सुबोध बनाना था। ये ग्रन्थ वेदों के व्याकरण, शब्दार्थ, छन्द, उच्चारण, यज्ञों के समय-निर्धारण और विधि-विधान से सम्बन्धित विषयों का सांगोपांग विवेचन करते हैं। परम्परा के अनुसार वेदांगों की संख्या छह मानी गई है—शिक्षा, व्याकरण, छन्द, निरुक्त, ज्योतिष और कल्प।

शिक्षा का सम्बन्ध मंत्रों के शुद्ध उच्चारण, स्वर, मात्रा और ध्वनि-विन्यास से है। व्याकरण वेदों की भाषा को समझने और शब्दरचना के नियमों को स्पष्ट करता है। छन्द वैदिक मंत्रों की पद्यात्मक रचना और लय से सम्बन्धित है। निरुक्त शब्दों के

अर्थ-निर्वचन और व्युत्पत्ति की व्याख्या करता है। ज्योतिष यज्ञों और संस्कारों के लिए शुभ काल और समय-निर्धारण का शास्त्र है। कल्प वेदिक कर्मकाण्ड, यज्ञ-विधि और संस्कारों का व्यवस्थित विधान प्रस्तुत करता है। इन छह वेदांगों का उल्लेख प्रसिद्ध श्लोक में किया गया है—

'शिक्षा व्याकरणं छन्दो निरुक्तं ज्योतिषं तथा।

कल्पश्चेति षडङ्गानि वेदस्याहुर्मनीषिणः।।'

सामान्यतः ये वेदांग सूत्रशैली में लिखे गए हैं, जिससे वे संक्षिप्त, नियमात्मक और व्यवहार में उपयोगी बन सके। इस प्रकार कर्मकाण्ड, ज्ञानकाण्ड और वेदांग—तीनों मिलकर वैदिक वाङ्मय को एक पूर्ण, सुसंगठित और बहुआयामी ज्ञान-परम्परा के रूप में प्रतिष्ठित करते हैं।

वेदों की अष्ट विकृतियाँ एवं संरक्षण के उपाय :

वेद भारतीय ज्ञान-परम्परा की सबसे प्राचीन और पवित्र धरोहर हैं। चूँकि वैदिक युग में लिखित परम्परा का विकास नहीं हुआ था, इसलिए वेदों का संरक्षण पूर्णतः मौखिक परम्परा पर आधारित था। इस मौखिक परम्परा में यह अत्यन्त आवश्यक था कि मंत्रों के शब्द, स्वर, क्रम और उच्चारण में किसी भी प्रकार का परिवर्तन न हो। इसी उद्देश्य से वेदों के संरक्षण और शुद्ध उच्चारण के लिए विशेष उपाय विकसित किए गए, जिन्हें 'विकृतियाँ' कहा गया। इन विकृतियों के माध्यम से मंत्रों के पदों को घुमा-फिराकर, आगे-पीछे करके तथा विभिन्न क्रमों में उच्चारित किया जाता था, ताकि यदि कहीं भी त्रुटि हो, तो वह तुरंत पकड़ में आ जाए।

वेदों की ये विकृतियाँ कुल आठ मानी गई हैं, जिन्हें अष्ट विकृतियाँ कहा जाता है। इनके नाम हैं—जटा, माला, शिखा, रेखा, ध्वज, दण्ड, रथ और घन। परम्परा के अनुसार इनका विकास क्रमबद्ध रूप में महर्षियों द्वारा किया गया। इनमें घनपाठ को सबसे कठिन, विस्तृत और पूर्ण माना जाता है, क्योंकि इसमें पदों का आवर्तन और संयोजन अत्यन्त जटिल होता है। एक प्रसिद्ध श्लोक में इन आठों विकृतियों का उल्लेख इस प्रकार किया गया है—

'जटा माला शिखा रेखा, ध्वजो दण्डो रथो घनः।

अष्टौ विकृतयः प्रोक्ताः क्रमपूर्वा महर्षिभिः।।'

इन आठ विकृतियों के अतिरिक्त वेदपाठ की तीन मूल पद्धतियाँ भी मानी जाती हैं—संहितापाठ, पदपाठ और क्रमपाठ। वस्तुतः यही तीन पाठ आधाररूप हैं और इन्हीं के ऊपर जटा, शिखा और घन जैसे जटिल पाठ विकसित हुए। वेदों की सुरक्षा की दृष्टि से सामान्यतः छह प्रकार के पाठ अधिक प्रचलित और महत्त्वपूर्ण माने गए

हैं—संहितापाठ, पदपाठ, क्रमपाठ, जटापाठ, शिखापाठ और घनपाठ।

संहितापाठ में मंत्र अपने मूल, अविभाजित रूप में पढ़ा जाता है। इसमें संधियाँ यथावत रहती हैं और मंत्र उसी रूप में उच्चारित होता है, जिस रूप में वह संहिता में प्राप्त होता है। यह वेदपाठ का सबसे स्वाभाविक और प्रारम्भिक रूप है। इसके विपरीत पदपाठ में मंत्र के प्रत्येक पद को पृथक्-पृथक् करके पढ़ा जाता है। इसमें संधियों को तोड़ दिया जाता है और प्रत्येक शब्द अपने स्वतंत्र रूप में स्पष्ट उच्चारण के साथ बोला जाता है। उदाहरण के लिए यदि संहितापाठ में चार पद कखगघ के रूप में संयुक्त हों, तो पदपाठ में उन्हें क, ख, ग, घ के रूप में अलग-अलग पढ़ा जाएगा। इससे मंत्र के प्रत्येक शब्द की शुद्धता और स्पष्टता सुनिश्चित होती है।

क्रमपाठ में पदों को युग्मों के क्रम में पढ़ा जाता है। इसमें पहले और दूसरे पद का संयुक्त उच्चारण, फिर दूसरे और तीसरे पद का, तथा फिर तीसरे और चौथे पद का उच्चारण किया जाता है। इस प्रकार क्रमपाठ में पदों का क्रम इस रूप में रहता है—कख, खग, गघ। इससे पदों का क्रम सुरक्षित रहता है और किसी भी प्रकार की अदला-बदली की संभावना समाप्त हो जाती है।

जटापाठ इससे अधिक जटिल होता है। इसमें पदों को आगे-पीछे करके पढ़ा जाता है, जैसे—कख, खक, कख; फिर खग, गख, खग। इस प्रकार पदों को जटा अर्थात् जूड़े के समान गूँथ दिया जाता है। इससे न केवल क्रम की पुष्टि होती है, बल्कि उच्चारण की भी पूर्ण परीक्षा हो जाती है।

शिखापाठ में पदों का संयोजन और अधिक विस्तृत हो जाता है। इसमें पहले दो पद, फिर उनके उलट, फिर तीन पदों का संयुक्त रूप—इस प्रकार शिखा के समान क्रम बनता है। जैसे—कख, खक, कखग; फिर खग, गख, खगघ। यह पाठ जटापाठ की अपेक्षा अधिक कठिन और स्मरण-शक्ति की कसौटी पर खरा उतरने वाला होता है।

घनपाठ इन सभी में सबसे कठिन और व्यापक है। इसमें पदों का बार-बार आवर्तन, आगे-पीछे और संयुक्त रूप में किया जाता है। जैसे—कख, खक, कखग, गखक, कखग। घनपाठ में एक ही पद-समूह को अनेक बार भिन्न-भिन्न क्रमों में उच्चारित किया जाता है, जिससे किसी भी प्रकार की भूल की कोई संभावना नहीं रहती। इसी कारण घनपाठी विद्वानों को वैदिक परम्परा में अत्यन्त सम्मान की दृष्टि से देखा जाता है।

इन पाठ-पद्धतियों को स्पष्ट करने के लिए ऋग्वेद के मंत्र 'ओषधयः सं वदन्ते सोमेन सह राज्ञा' का उदाहरण दिया जाता है। संहितापाठ में यह मंत्र अपने मूल

रूप में पढ़ा जाता है। पदपाठ में इसे ओषधयः, सम्, वदन्ते, सोमेन, सह, राज्ञा—इस प्रकार अलग-अलग किया जाता है। क्रमपाठ में ओषधयः सम्, सं वदन्ते, वदन्ते सोमेन, सोमेन सह, सह राज्ञा—इस क्रम से पाठ होता है। जटापाठ, शिखापाठ और घनपाठ में इन्हीं पदों को और अधिक जटिल क्रमों में दोहराया जाता है।

इन अष्ट विकृतियों और विविध पाठ-पद्धतियों का सबसे बड़ा लाभ यह हुआ कि सहस्रों वर्षों तक मौखिक परम्परा में सुरक्षित रहने के बावजूद वेदों के मंत्रों में न तो कोई प्रक्षेप हुआ और न ही कोई परिवर्तन। आज भी ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद की संहिताएँ मूल रूप में उपलब्ध हैं। यह विश्व के बौद्धिक इतिहास में एक अद्भुत उदाहरण है। इसके लिए समस्त संसार वेदपाठी विद्वानों और आचार्यों का ऋणी है, जिन्होंने कठोर साधना, अनुशासन और स्मरण-शक्ति के बल पर इस अमूल्य ज्ञान-सम्पदा को अक्षुण्ण सुरक्षित रखा। उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट करने के लिए शब्द अपर्याप्त प्रतीत होते हैं।

वैदिक वाङ्मय : संहिताएँ :

वैदिक वाङ्मय भारतीय ज्ञान-परम्परा की अत्यन्त विस्तृत, सुव्यवस्थित और परम्परागत साहित्यिक धरोहर है। इसका विकास विभिन्न वेदों, उनकी शाखाओं तथा उनसे सम्बद्ध ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद् और कल्पसूत्रों के माध्यम से हुआ। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद—इन चारों वेदों के साथ सम्बद्ध साहित्य मिलकर वैदिक वाङ्मय का पूर्ण स्वरूप प्रस्तुत करता है।

ऋग्वेद संहिता :- ऋग्वेद संहिता वैदिक साहित्य की सर्वप्राचीन कृति मानी जाती है। इसकी प्रमुख शाखाएँ शाकल और बाष्कल हैं। ऋग्वेद से सम्बद्ध ब्राह्मण ग्रन्थों में ऐतरेय ब्राह्मण और कौषीतकि (शांखायन) ब्राह्मण का विशेष महत्त्व है, जिनमें यज्ञों की विधि, अर्थ और प्रतीकात्मक व्याख्या दी गई है। इसी परम्परा में ऐतरेय आरण्यक और शांखायन आरण्यक प्राप्त होते हैं, जो कर्मकाण्ड से ज्ञानकाण्ड की ओर संक्रमण को दर्शाते हैं। ऋग्वैदिक उपनिषदों में ऐतरेय, कौषीतकि तथा बाष्कल मंत्रोपनिषद् प्रमुख हैं, जिनमें आत्मा और ब्रह्म-तत्त्व का गूढ़ विवेचन मिलता है। ऋग्वेद से सम्बद्ध श्रौतसूत्रों में आश्वलायन और शांखायन श्रौतसूत्र तथा गृह्यसूत्रों में आश्वलायन, शांखायन और कौषीतकि गृह्यसूत्र उल्लेखनीय हैं। इनके अतिरिक्त शौनक, शाकल्य, पैंगि, पराशर आदि परम्पराओं से जुड़े कुछ गृह्यसूत्र अमुद्रित रूप में माने जाते हैं।

यजुर्वेद संहिता :- यजुर्वेद संहिता दो भागों में विभक्त है—शुक्ल यजुर्वेद और कृष्ण यजुर्वेद। शुक्ल यजुर्वेद की माध्यन्दिन (वाजसनेयि) और काण्व शाखाएँ प्रसिद्ध हैं। इससे सम्बद्ध शतपथ ब्राह्मण वैदिक साहित्य का सबसे विशाल और

महत्त्वपूर्ण ब्राह्मण ग्रन्थ है, जिसमें यज्ञ, दर्शन और प्रतीकवाद का अद्भुत समन्वय मिलता है। शुक्ल यजुर्वेद का आरण्यक रूप बृहदारण्यक है, जो आगे चलकर बृहदारण्यक उपनिषद् के रूप में वैदिक दर्शन की ऊँचाइयों को छूता है। इसके साथ ईशोपनिषद् भी शुक्ल यजुर्वेद से सम्बद्ध मानी जाती है। कात्यायन श्रौतसूत्र और पारस्कर गृह्यसूत्र शुक्ल यजुर्वेदी कल्पसूत्र परम्परा के प्रमुख ग्रन्थ हैं। इसी वेद से सम्बद्ध बौधायन, आपस्तम्ब, कात्यायन आदि शुल्बसूत्र वैदिक ज्यामिति और वेदिक यज्ञ-वेदियों की रचना का ज्ञान प्रदान करते हैं।

कृष्ण यजुर्वेद संहिता :- कृष्ण यजुर्वेद की तैत्तिरीय, मैत्रायणीय, कठ (काठक) और कपिष्ठल-कठ शाखाएँ मानी जाती हैं। तैत्तिरीय ब्राह्मण और तैत्तिरीय आरण्यक इसके प्रमुख ग्रन्थ हैं। इसी परम्परा से तैत्तिरीय उपनिषद्, कठ उपनिषद्, श्वेताश्वतर उपनिषद्, मैत्रायणी (मैत्री) उपनिषद् तथा महानारायण उपनिषद् का विकास हुआ। कृष्ण यजुर्वेद से सम्बद्ध श्रौतसूत्रों में बौधायन, आपस्तम्ब, भारद्वाज, वैखानस आदि तथा गृह्यसूत्रों में मानव, हिरण्यकेशि, आग्निवेश्य आदि का विशेष स्थान है।

सामवेद संहिता :- सामवेद संहिता का सम्बन्ध मुख्यत: यज्ञीय गान परम्परा से है। इसकी कौथुम, राणायनीय और जैमिनीय शाखाएँ प्रसिद्ध हैं। कौथुमीय परम्परा में ताण्ड्य महाब्राह्मण (पंचविंश ब्राह्मण), षड्विंश ब्राह्मण, सामविधान, आर्षेय और संहितोपनिषद् ब्राह्मण जैसे ग्रन्थ मिलते हैं। जैमिनीय परम्परा में जैमिनीय ब्राह्मण, जैमिनीय तलवकार ब्राह्मण और जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण प्रमुख हैं। सामवेद से सम्बद्ध छान्दोग्य और केन उपनिषद् वैदिक दर्शन के अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ माने जाते हैं। सामवेदी श्रौतसूत्रों में लाट्यायन, द्राह्यायण और जैमिनीय श्रौतसूत्र तथा गृह्यसूत्रों में गोभिल, खादिर आदि का उल्लेख मिलता है।

अथर्ववेद संहिता :- अथर्ववेद संहिता की शौनक और पैप्पलाद शाखाएँ मानी जाती हैं। इससे सम्बद्ध गोपथ ब्राह्मण अथर्ववैदिक कर्मकाण्ड की व्याख्या करता है। अथर्ववेद से प्रश्न, मुण्डक और माण्डूक्य उपनिषद् जैसे गहन दार्शनिक उपनिषद् जुड़े हैं, जिनमें ब्रह्मज्ञान, आत्मा और मोक्ष का सशक्त विवेचन प्राप्त होता है। अथर्ववेद के श्रौतसूत्रों में वैतान श्रौतसूत्र और गृह्यसूत्रों में कौशिक सूत्र का विशेष महत्त्व है।

इन सभी वेदों के साथ धर्मसूत्र परम्परा भी विकसित हुई, जो समाज, आचार और विधि-विधान का विधान प्रस्तुत करती है। गौतम, बौधायन और आपस्तम्ब धर्मसूत्र प्राचीन माने जाते हैं, जबकि वसिष्ठ, हारीत, हिरण्यकेशि, विष्णु आदि गौण धर्मसूत्रकार हैं। अत्रि, कश्यप, बृहस्पति, भारद्वाज जैसे अन्य धर्मसूत्रकारों का भी उल्लेख मिलता है।

वेदों के उपवेद :

वैदिक परम्परा में वेदों से सम्बद्ध सहायक और व्यावहारिक विद्याओं को 'उपवेद' कहा गया है। उपवेदों का उद्देश्य वैदिक ज्ञान को जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में उपयोगी बनाना था। इस दृष्टि से चारों वेदों के साथ उनके उपवेद निर्धारित किए गए हैं।

ऋग्वेद का उपवेद 'आयुर्वेद' माना गया है, जिसमें जीवन, स्वास्थ्य, रोग-निवारण और दीर्घायु के सिद्धान्तों का विवेचन मिलता है। यजुर्वेद का उपवेद 'धनुर्वेद' है, जो अस्त्र-शस्त्र विद्या, युद्ध-कौशल और राज्य-रक्षा से सम्बन्धित शास्त्र है। सामवेद का उपवेद 'गान्धर्ववेद' है, जिसमें संगीत, गान, नृत्य और नाट्य-कला का शास्त्रीय आधार प्रस्तुत किया गया है।

अथर्ववेद के उपवेद अपेक्षाकृत अधिक और विविध माने गए हैं। इनमें इतिहास और पुराण, स्थापत्य विद्या, सर्पवेद, पिशाचवेद तथा असुरवेद का उल्लेख मिलता है। ये सभी विद्याएँ सामाजिक जीवन, लोकविश्वास, निर्माण-कला तथा विविध व्यावहारिक आवश्यकताओं से सम्बन्धित हैं।

वेद अपौरुषेय हैं या पौरुषेय :

वेदों के स्वरूप को लेकर भारतीय परम्परा में यह मूल प्रश्न रहा है कि वेद किसी मनुष्य या ऋषि की रचना हैं अथवा ईश्वरप्रदत्त ज्ञान हैं। इस पर विभिन्न दर्शनों में गम्भीर विचार हुआ है। सामान्यतः तीन प्रमुख मत सामने आते हैं, जिनका केन्द्रबिन्दु वेदों की अपौरुषेयता ही है।

प्रथम मत के अनुसार वेद 'अपौरुषेय' हैं, अर्थात् वे किसी व्यक्ति-विशेष द्वारा रचित नहीं हैं। सृष्टि के प्रारम्भ में परमात्मा ने लोक-कल्याण के लिए जिस प्रकार सूर्य, वायु और जल प्रदान किए, उसी प्रकार मानव-मार्गदर्शन के लिए वेदों का ज्ञान ऋषियों को प्रदान किया। ऋषियों ने मंत्रों का साक्षात्कार किया, इसलिए वे 'मन्त्रद्रष्टा' कहलाए, कर्ता नहीं। ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद, शतपथ ब्राह्मण और बृहदारण्यक उपनिषद् में स्पष्ट कहा गया है कि चारों वेद परमात्मा या ब्रह्म से उत्पन्न हुए हैं और वे उसके श्वास-स्वरूप हैं। मनु भी वेदों को नित्य और ईश्वरीय मानते हैं। यास्क का मत है कि ऋषियों ने वेदों का प्रत्यक्ष दर्शन किया, वे उनके निर्माता नहीं हैं। मीमांसा और वेदान्त दर्शन इस अपौरुषेयत्व के समर्थक हैं।

द्वितीय मत न्याय और वैशेषिक दर्शन का है, जो वेदों को 'पौरुषेय' कहता है, किन्तु यहाँ 'पुरुष' से अभिप्राय ईश्वर है। इनके अनुसार वेदों में सार्थक और प्रामाणिक ज्ञान है, अतः उनका कर्ता कोई सर्वज्ञ सत्ता ही हो सकती है। ईश्वर ने वेदज्ञान ऋषियों

के हृदय में प्रकट किया और उन्होंने उसे वाणी के माध्यम से आगे बढ़ाया। इस प्रकार यह मत भी अन्ततः वेदों को ईश्वरीय और स्वतः प्रामाण्य मानता है।

तृतीय मत यह स्वीकार करता है कि ऋषियों को मंत्रों का कर्ता कहा गया है, क्योंकि मंत्रों के साथ उनके नाम जुड़े हैं और 'मन्त्रकृत्' तथा 'मन्त्रपति' जैसे शब्द मिलते हैं। किन्तु यह मत भी यह मानता है कि ऋषियों को प्राप्त ज्ञान ईश्वर के अनुग्रह से ही था। ऋषियों ने तप, साधना और ऋतंभरा प्रज्ञा के द्वारा ईश्वरीय संकेतों को ग्रहण किया और उन्हें वैखरी वाणी में प्रकट किया। यही मन्त्रदर्शन और मन्त्रकर्तृत्व का तात्पर्य है।

निष्कर्षतः वेदों के स्वरूप को लेकर भारतीय परम्परा में यह मूल प्रश्न रहा है कि वेद अपौरुषेय हैं या पौरुषेय। विभिन्न दर्शनों और वैदिक ग्रन्थों के विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि वेदों को मूलतः ईश्वरीय और नित्य ज्ञान माना गया है। ऋषि वेदों के रचयिता नहीं, बल्कि उनके 'मन्त्रद्रष्टा' हैं, जिन्होंने ईश्वर से प्राप्त ज्ञान का साक्षात्कार कर उसका प्रचार किया। ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद, ब्राह्मण और उपनिषद् वेदों को ब्रह्म से उत्पन्न, उसके श्वास-स्वरूप और नित्य बताते हैं। मीमांसा, वेदान्त और सांख्य दर्शन वेदों के अपौरुषेयत्व और स्वतः प्रामाण्य का समर्थन करते हैं। न्याय और वैशेषिक दर्शन वेदों को पौरुषेय कहते हुए भी उनके कर्ता के रूप में 'ईश्वर' को स्वीकार करते हैं, जिससे वे भी अन्ततः वेदों को ईश्वरीय मानते हैं। ऋषियों को मन्त्रकर्ता कहे जाने का अर्थ यह है कि उन्होंने ईश्वरीय संकेतों को ग्रहण कर उन्हें वाणी में व्यक्त किया। इस प्रकार सभी मत इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि वेदों का आदि स्रोत परमात्मा है और वे मानव-निर्मित न होकर ईश्वरीय, नित्य और सार्वकालिक ज्ञान हैं।

☆☆☆